ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.19, No.2, April – June,2024/32

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में नारी विमर्श : एक मूल्यांकन

सरोजनी कौशल, एम0ए0, पी.एच0 डी0 हिन्दी,
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या।
https://doi.org/10.61410/had.v19i2.186

प्राचीन समाज में स्त्री–स्थिति

प्राचीन भारत में स्त्री की छवि को लेकर इतिहासकारों में मत–वैभिन्न है। राष्ट्रवादी इतिहासकार प्राचीन भारत में स्त्रियों की स्थिति को अच्छा बताते हैं। वे यह भी मानते हैं कि भारत में स्त्रियों की स्थिति में गिरावट आने का प्रमुख कारण मुसलमानों का आक्रमण है। जबकि पश्चिम के ज्यादातर इतिहासकार जो हमेशा अपनी संस्कृति को दुनिया की श्रेष्ठ संस्कृतियों में मानते आये हैं वह यह मानते है कि भारत में स्त्रियों की खराब हालत के लिए खुद यहीं के लोग जिम्मेदार हैं। अपनी–अपनी विचार–समणियों के बावजूद भारत में 'प्राचीन समाज में नारी–छवि' क्या थी उस पर व्यापक विचार की जरूरत है।

सामाजिक स्थिति

दरअसल किसी भी समाज के विकास में पैमाना ही स्त्रियों के सामाजिक विकास से माना जाता है। जो समाज जितना ही सभ्य और सुसंस्कृत होगा स्त्रियों की सामाजिक स्थिति वहाँ पर उतनी ही अच्छी होगी। व्यावहारिक आधार पर देखे तो पाएँगे कि स्त्रियों की ंख्या समाज में करीब–करीब आधी है। जब तक स्त्री–समाज विकसित नहीं होगा तब तक पूरे समाज कमे विकास के बारे में सोचना बेमानी है। ''अधिकांश विद्वानों के अनुसार स्त्री को सदैव वैधानिक दृष्टिकोण से अल्पवयस्क कहा गया है। कन्या के रूप में वह अपने माता–पिता के नियंत्रण में रहती, युवती होने पर पति का अधिकार होता, वैधव्य प्राप्त होने पर वह पुत्रों के आश्रित हो जाती। यहाँ तक कि बौद्ध धर्म के उदारतापूर्ण नियमों के अनुसार भी धर्म के प्रति कितनी ही आस्था रखने वाली भिक्षुणी को सदैव नवीनतम भिक्षु के अधीन पर रहना पड़ता था। प्राचीन नीति–ग्रन्थों ने एक स्त्री के स्तर, चाहे वह किसी श्रेणी की हो, शूद्र के समान आँका है।''[1] अरब–यात्रियों ने भारत का भ्रमण किया। उन्होंने अपने यात्रा–वृतांत में लिखा है कि दरबारों में रानियाँ पर्दा नहीं रखती थीं। हाँ, यह अवश्य था कि सामान्य जनता से उनका पर्दा रहता था। उच्च वर्ग की स्त्री का प्रायः आम जनता से निकट का सम्पर्क नहीं था। यद्यपि उस समय स्त्री को उतनी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी, फिर भी प्राचीन तमिल साहित्य से ज्ञात होता है कि युवक और युवतियों के मिलने में कोई बाधा नहीं थी। भरहुत तथा साँची की मूर्तियों से भी यही आभास मिलता है। स्त्री को जो स्वतन्त्रता प्राप्त थी वह घर के अन्दर ही प्राप्त थी। 'मनुस्मृति' में एक जगह कहा गया है कि बचपन में, जवानी में और बुढ़ापे में स्त्री को घरों में भी अपनी इच्छा से कोई काम नहीं करना चाहिए –

'बालया वयवत्या या वृद्धया वाऽपि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित् कार्यं गृहेष्वपि।।

'मनुस्मृति' में ही जहाँ स्त्री के जीने के लिए एक तरह की दीवार बना दी गयी हे, उसकी स्वतन्त्रता के हरण का प्रयास किया गया है वहीं पर स्त्री की पत्नी के रूप में प्रशंसा भी की गयी है –

'भार्यान्वन्तः क्रियावन्तः सभार्या गृहमेधिनः।

भार्यावन्तः प्रमोदन्ते भार्यावन्तः श्रियान्विताः।।

अर्थात् जिनके पत्नी हैं, वे ही यज्ञ आदि कर्म कर सकते हैं। सपत्नीक पुरुष ही सच्च गृहस्थ हैं। पत्नी वाले पुरुष सुखी हैं और प्रसन्न रहते हें। जो पत्नी से युक्त हैं, वे माना लक्ष्मी से सम्पन्न हैं। प्राचीन इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ.ए.एल. बाशम अपनी पुस्तक 'अद्भुत भारत' में लिखते हैं– 'इस प्रकार के अवतरण जिनमें स्त्रियों के सम्मान एवं आदर का वर्णन किया गया है, संख्या में उतने ही अधिक हैं जितने कि वे जिनमें उनके अधीनत्व के विषय में उल्लेख किया गया है। वास्तव में स्त्रियों के प्रति प्राचीन भारतीय प्रवृति रहस्यपूर्ण थी। वह एक ही समय में देवी तथा सेविका, एक पवित्र आत्मा तथा दुराचारिणी समझी जाती थी। 'रामायण' की नायिका सीताजी यदि अपने पति के सम्मुख पूर्णरूपेण विनम्र एवं सरल स्वभाव की हैं, तो इसके प्रतिकूल 'महाभारत' की नायिका द्रौपदी अपने पाँचों पतियों पर पूर्ण अधिकार रखती थी तथा असन्तुलित शब्दों में उन्हें डाँट भी सकती थी। मौर्य सम्राटों की रक्षा धनुष तथा खड्ग विद्या में प्रशिक्षित वीरांगनाओं द्वारा की जाती थी तथा प्राचीन पंजाब के कुछ कबीले उन स्त्रियों की भयंकरता से प्रभावित हुए थे, जिन्होंने सिकन्दर का विरोध करने में अनेक पुरुषों का सहयोग दिया था। उत्तरकाल में भी युद्ध में वीरांगनाओं ने अनेकशः भाग लिया था तथा राजपूतों के कुछ समय पूर्व तक यह प्रथा प्रचलित रही थी।''[2]

प्राचीनकाल में उत्खननों से प्राप्त मातृदेवी (प्रकृति व शक्ति) की प्रतिमाओं और मुहरों से अनुमान लगाया जाता है कि स्त्री की स्थिति अच्छी थी। वैदिक काल में पितृसत्तात्मक पारिवारिक व्यवस्था होने के बाद भी पुत्र–जन्म को महत्व देने के साथ–साथ पुत्री को भी आदर एवम् सम्मान दिया जाता था। पर्दा–प्रथा का प्रचलन नहीं था। विधवा दूसरा विवाह कर सकती थी और पुत्र–प्राप्ति के लिए 'नियोग' भी सम्भव था। एक से ज्यादरा पत्नियाँ होने पर भी सबको सम्मपन के साथ रखा जाता था। डॉ0 सरस्वती मिश्र अपनी पुस्तक 'भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति' में प्राचीन भारतीय समाज को तीन कालों में बाँटती हैं जिसमें वे पूर्व–आर्य–युग (ई.पू. 3000–ई.पू. 2000), वैदिक–युग (ई.पू. 2000–ई.पू. 600) में स्त्रियों की स्थिति कमोवेश ठीक बताती हैं, जबकि क्रान्ति–युग (ई.पू. 600–300ई.) और पौराणिक–युग (ईसवी 300–1200 ई.) में लगातार स्त्रियों की स्थिति में गिरावट होने की बात स्वीकार करती है। उन्होंने लिखा है –'इस युग में स्त्रियों की स्थिति लगातार गिरती ही चली गयी, हिन्दू धर्मावलम्बियों ने समाज में जैसा कि देसाई व कृष्णाराज (1987) ने लिखा है, स्त्रियों के लिए इस समय धर्म का रास्ता खुला, क्योंकि बौद्ध धर्म एवम् जैन धर्म में उन्हें 'बौद्ध भिक्षुणी' और जैन साध्वी' बनने का अधिकार दिया गया था। देसाई (1977:19) ने कहा है कि धर्मों में भी स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान तो नहीं थी, किन्तु ब्राह्मणवाद से अच्छी अवश्य थी।''[3]

'मनुस्मृति' और 'अर्थशास्त्र' में स्त्रियों की स्थिति पर बात करते हुए डॉ. सरस्वती मिश्र लिखती हैं – कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और 'मुनस्मृति' इस समय की सामाजिक व्यवस्था का विस्तृत विवरण देते हैं। स्त्रियों के लिए विवाह के अतिरिक्त किसी भी संस्कार में वेद–मंत्रों का उच्चारण वर्जित देते हैं। स्त्रियों के लिए विवाह के अतिरिक्त किसी भी संस्कार में वेद–मंत्रों का उच्चारण वर्जित था। उपनयन –संस्कार ने होने के कारण वे शिक्षा एवम् वेद के ज्ञान से वंचित हो गयीं। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' व 'मनु–संहिता' में कही भी स्त्रियों के लिए शिक्षा का उल्लेख नहीं है। इस युग में स्त्रियों के लिए सामाजिक एवम् कानूनी दृष्टि से सदैव पुरुषों के अधीन रहने की नींव तैयार की गयी। विवाह की आयु शारीरिक परिपक्वता आने के पहले (13–14 वर्ष) निश्चित की गयी। पतिव्रत–धर्म पर जोर तथा 'विधवा–विवाह' एवं 'अर्थशास्त्र' में सती–प्रथा का उल्लेख नहीं है, फिर भी 'रामायण' व 'महाभारत' के

कुछ उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि यह प्रथा इस युग में आरम्भ हो चुकी थी। कौटिल्य ने विशेष परिस्थितियों में विधवा को विवाह की अनुमति दी, जबकि विधुर पुरुष के लिए दूसरा विवाह आवश्यक बतलाया गया। इस प्रकार इस समय नैतिकता का दोहरा मापदण्ड समाज में स्थापित हो गया था। वैदिक काल में प्राप्त स्त्रियों की गतिशीलता पर अंकुश लगा दिया गया था। उन्हें अकेले बाहर जाने की अनुमति प्राप्त नहीं थी एवम् उन्हें घर के अंदर के कार्य ही मनु द्वारा सौंपे गये थे। पर्दा–प्रथा का प्रचलन भी रामायण–काल में प्रारम्भ हो चुका था। सारांश यह कि क्रान्तिकाल में स्त्रियों की स्थिति वैदिक काल की तुलना में काफी निम्न हो गयी थी।'[4]

प्राचीन समाज में स्त्रियों की स्थिति को लेकर बहुत मतभेद है। पश्चिमी विद्वान् डॉ. जेम्स मिल ने हिन्दू सभ्यता की बर्बरता को हिन्दू स्त्रियों की दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार माना है। इस विचार को उन्होंने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश भारत का इतिहास' में विस्तार से बताया है। इसी तरह डॉ. विसेंट स्मिथ की सामान्य राय यही थी कि जो कुछ भी भारतीय है वह खराब और निकृष्ट हैं। इन पश्चिमी विद्वानों ने अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए भारत की संस्कृति को लगातर छोटा करने की कोशिश की और वे अतिवाद के शिकार भी हो गये। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में राष्ट्रवादी विचारधारा के लेखकों ने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति काफी अच्छी थी और भारत में स्त्रियों की स्थिति में आयी गिरावट का कारण बाहरी आक्रान्ता थे, खासकर मुस्लिम। उन्होंने भारत में युद्ध और शासन के दौरान महिलाओं का अपहरा किया और उनकी इज्जत के साथ खिलवाड़ किया। पर्दा–प्रथा, सती प्रथा, कम उम्र में विवाह, शिशु–बालिका–हत्या आदि कुरीतियाँ पैदा हुईं। डॉ0 शकुल्तलाराव शास्त्री ने लिखा, 'दसवी और ग्यारहवीं सदियाँ हमारे देश में मुसलमानों ने आगमन की साक्षी रही हैं, जिन्होंने बाद में यहाँ अपने पैर मजबूती से जमा लिये। जब हिन्दू संस्कृति का एक ऐसी संस्कृति से टकराव हुआ जो एकदम भिन्न थी तो समाज के अगुओं ने अपने हितों, विशेषकर महिलाओं की स्थिति की सुरक्षा के लिए नियम–कानून बनाने शुरू कर दिये। उन (महिलाओं) पर गहरी बंदिशें लगा दी गयीं। इस काल में हम बाल–विवाह की जड़ें पूरी तरह जमते हुए देखते हैं। शैतानी हाथों में पकड़कर अपनी दुर्गति करनवाने के बजाए विधवा का मर जाना ही बेहतर था। इसलिए विधवा द्वारा आत्मदाह को कानूनी मान्यता दे दी गयी, जिसमें आशा की जाती थी कि इस प्रकार उस दुर्भाग्यशाली पीड़ित महिला को स्वर्गिक वैभव की प्राप्ति होगी। यह और ऐसे प्रावधान लागू कर दिये गये जिनसे महिलाओं की स्वतंत्रता पर काफी बंदिश लग गयीं। ऐसा सम्भवतः उन्हें विदेशियों से बचाने और नस्ल की शुद्धता बनाये राने के लिए किया गया।[5]

इस तरह देखा जा सकता है कि विभिन्न मतवादों के आग्रह के कारण वस्तुस्थिति की जानकारी नहीं मिलती। जबकि सच्चाई यह है कि 'ऋग्वेद में एक हजार से ज्यादा सूक्त हैं। इनमें से महिला मनीषियों द्वारा दिये गये पूर्णतः या आंशिक रूप से सम्बन्धत श्लोकों की संख्या महज 12–15 से ज्यादरा नहीं है। यानी तकरीबन सिर्फ एक प्रतिशत। इस तरह महिला मनीषियों का प्रतिनिधित्व स्पष्टतः बहुत मामूली है। यदि एसे प्रतिष्ठित पवित्र परम्पराओं के निर्माण में महिलाओं के योगदान का संकेत मान लिया जा ए तो यह संकेत कतई उत्साहजनक और प्रेरणाप्रद नहीं है।[6] इसी तरह 'वृहदारण्यक उपनिषद्' में संभोग को प्रभुत्व और अधीनता के सन्दर्भ में परिभाषित किया गया है और संभोग के लिए स्त्री को फुसलाने, दबाने या यदि जरूरी हो तो जबरदस्ती विवश करने के भी प्रावधान है। 'शतपथ ब्राह्मण' में स्त्री की भूमिका को मनचाहे ढंग से परिभाषित किया गया। वे गर्भाशय की तुलना में वीर्य की श्रेठता के विचार को ही आगे बढ़ाते रहे। 'मनुस्मृति' में स्त्री की तुलना खेत से की गयी है जिसमें पुरुष बीज बोता है। संतति का निष्क्रिय सहायक आधारस्थल के रूप में गर्भ धारण करता है तथा

कन्यादान के विचार पर आधारित विवाह को श्रेष्ठ मानना और स्त्री को एक प्रकार की सम्पत्ति के रूप में देखना इसी तथ्य से स्पष्ट उदाहरण हैं।[7]

वैदिक ग्रन्थों के पश्चात् लौलिक काव्य के रूप में दो बड़े महाकाव्य 'रामायण' एवम् 'महाभारत' हैं जिनसे उस समय के समाज में स्त्री की स्थिति का पता चलता है। 'रामायण' की रचना 800 ई.पू. के आसपास हुई थी। रामायण–काल में यद्यपि परिवार का मुखिया पिता होता था और उसका आदर्श्न सर्वोपरि था, लेकिन स्त्री की स्थिति कम महत्वपूर्ण नहीं थी वह घर के अन्दर की व्यवस्थापिका होती थी। घर की सारी व्यवस्था की देख–रेख वहीं करती थी और सामान्यतः उसके कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता था। घर में सम्मान का दर्जा उसे प्राप्त था और वह घर के लिए सम्माननीय थी। नारी को सम्मान और आदरसूचक शब्दों के साथ बुलाया जाता था। 'देवि' 'कल्याणि', 'सुन्दरि', 'भद्रे' आदि सम्मानजनक शब्दों से सम्बोधित किया जाता था और उसके साथ अमर्यादित व्यवहार से बचा जाता था।[8] रामायण–काल में अनेक पत्नियाँ रखने का प्रचलन था, यद्यपि इसको सम्मानजनक दर्जा प्राप्त नहीं था। जबकि स्त्री के लिए आदर्श एक पति ही माना जाता था। डॉ. लता सिंहल ने रामायण–काल में स्त्री की धार्मिक स्थिति के बारे में लिखा है – ''रामायण' में सर्वत्र धार्मिक क्रियाकलापों में नारी की स्पष्ट प्रमुखता दिखायी देती है। उसकी अनुपस्थिति में पति यज्ञ–कार्य नहीं कर सकता था। वस्तुतः पत्नी का कर्त्तव्य तथा अधिकार था कि वह पति की सहधर्मचारिणी बनकर उसे यज्ञ द्वारा देव–ऋण तथा पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ–ऋण से मुक्त कराये। अतएवं पुरूष सपत्नीक यज्ञ के अधिकारी थे। दशरथ के पुत्रेष्टि–यज्ञ में तीनों रानियाँ साथ रही थीं। राम ने अश्वमेध–यज्ञ में सीता की स्वर्ण–मूर्ति स्थापित की थी।[9]

'रामायण' की ही तरह का महत्ता–प्राप्त महाकाव्य 'महाभारत' है, जिसका पूर्ण विकसित स्वरूप ईसा की पाँचवी शताब्दी के पूर्व निर्धारित हो चुका थ। महाभारत में स्त्री को लक्ष्मी का रूप माना गया है : उनसे ही घर का सौन्दर्य व सौभाग्य होता है।[10] 'महाभारत' में स्त्री को अत्यन्त उच्च आसन पर बिठाया गया है। उसको घर की शोभा कहा गया है, उससे घर की सुन्दरता होती है, वह पूजा के योग होती है तथा किसी भी दशा में उसका अपमान वर्जित है। महाभारत में द्रौपदी को दाँव पर लगाने के अलावा कोई भी उदाहरण पत्नी को बेचने, उधार देने या दान देने का नहीं मिलता। महाभारत – काल में कन्या की स्थिति अन्यन्त ऊँची थी। कन्या का जन्म मंगल–सूचक माना जाता था। देवयानी के प्रति शुक्राचार्य का स्नेह या महाभारत में द्रौपदी की स्थिति देखी जा सकती है जो अपने माता–पिता की अत्यन्त लाडली थी। लेकिन इसके साथ ही साथ नारी निन्दा भी की गयी है। 'महाभारत' में नारी–निन्दा से पूर्ण वाक्यों की पर्याप्त संख्या है। महाभारत में वर्णित है कि 'यदि किसी की सौ जिह्वा हों और वह सौ वर्षों तक जिए और उसे अन्य कोई काम न हो तो भी वह स्त्रियों के दोष पूरे कहे बिना ही मर जाएगा।[11]

इस तरह, निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री की छवि' को लेकर बहुत मतभेद है। एक ओर जहाँ राष्ट्रवादी इतिहासकार स्त्री की छवि को बहुत सम्मानजनक बताते हैं, वहीं दूसरी तरफ पश्चिम के ज्यादातर विद्वान प्राचीन भारत में स्त्री की स्थिति को अच्छा नहीं मानते। इन दोनों वर्गों के इतिहासकारों और वस्तु–स्थिति का अध्ययन करने के बाद देखने में आया कि प्राचीन समाज में स्त्री की स्थिति न बहुत खराब थी और न बहुत अच्छी। स्त्री का सम्मानजनक स्थान था, लेकिन वह घर के अन्दर ही। स्त्री प्राचीन भारतीय समाज में घर के बाहर पुरुष की बंदिशों के तहत् ही जीती थी। पुरुष–सत्तात्मक व्यवस्था में पति ही सर्वोपरि था और उसको उसी के अनुसार

अपना जीवन व्यतीत करना होता था। पति को पमरेश्वर मानने का विधान एक तरह से था और विभिन्न शास्त्रों और मतवादों के सहारे स्त्री को कैद करने की पूरी कोशिश की गयी थी।

सन्दर्भ सूची –

1. डॉ0 ए0 एल0 वाशम, अद्भुत, पृ0–147
2. डॉ0 ए0 एल0 वाशम, अद्भुत, पृ0–148
3. डॉ0 सरस्वती मिश्र, भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति, पृ0–10
4. डॉ0 सरस्वती मिश्र, भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति, पृ0–12–13
5. Dr. Shakuntla Rao Shastri, Women in the Vedic Age, pp.-172-173
6. डॉ0 उमा चक्रवमी, नारीवादी रातनीति : संघर्ष एवम् मुद्दे, पृ0–141
7. डॉ0 उमा चक्रवमी, नारीवादी रातनीति : संघर्ष एवम् मुद्दे, पृ0–142, 44, 46
8. न हि स्त्रीषु महात्मनः क्वचित् कुर्वन्ति दारूणम् : वाल्मीकि रामायण, 4.33.36
9. डॉ0 लता सिंघल, भारतीय संस्कृति में नारी, पृ0–33
10. महाभारत, 5.38.11
11. यदि जिह्ह –संहस्र स्याज्जीवेच्च शरदां शतम्।
    अनन्यकर्मा स्त्रीदोषाननुक्त्वा निधनं व्रजेत्।। महाभारत, 12.74.9